राष्ट्रवाद का रास्ता संविधान होकर

कथित गौरक्षक बूढ़ी और बीमार गायों की कभी परवाह नहीं करते। गाय कूड़ेदानों पर मंडराती फिरती हैं, प्लास्टिक की थैलियां सटक जाने से उनकी असमय मौत हो जाती है, या सरकार के पैसे से चलने वाली गौशालाओं में तमाम पीड़ाकर स्थितियों में गायों को रहना पड़ता है। लेकिन कथित गौरक्षकों को इनकी परवाह नहीं है। उत्तर प्रदेश में एंटी-रोमियो स्कवायड्स ने युवा जोड़ों को हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा उत्पीड़ित किए जाने के हालात बना रखे हैं

आगामी 26 मई को प्रधानमंत्री अपने कार्यकाल के तीन वर्ष पूरे कर रहे हैं। मोदी का चुनाव अभियान-सुशासन, मिनिमम गवर्नमेंट-मेक्सिमम गवर्नेंस, सबका साथ-सबका विकास-जैसे वादों पर केंद्रित था। यह भी वादा था कि नागरिकों के अच्छे दिन आने वाले हैं। मोदी बेहद ध्रुवीकृत व्यक्तित्व बन चुके हैं-कुछ उन्हें भगवान का दर्जा देते हैं, उनकी नीतियों और कार्यकलाप को उम्दा ठहराने में कोई कसर नहीं छोड़ते तो दूसरी तरफ ऐसे भी लोग हैं, जो उन्हें और उनकी सरकार को बेहद नापसंद करते हैं। पहली श्रेणी के लोगों को प्रायः मोदी भगत कहा जाता है। गुजरात में 2002 में हुए सांप्रदायिक दंगों के बाद से मोदी भगतों की संख्या में खासा इजाफा हुआ है। इन दंगों के सर्वाधिक शिकार मुस्लिम हुए थे। एक आंकड़े के मुताबिक, दंगों में दो हजार से ज्यादा लोग मारे गए थे, और डेढ़ लाख से ज्यादा लोगों को विस्थापित होना पड़ा था। मोदी ने उन दंगों को फरवरी, 2002 में साबरमती एक्सप्रेस को जलाए जाने के प्रतिक्रिया स्वरूप हुए करार दिया था। इन दंगों, जो देश के इतिहास में सर्वाधिक भीषण बताए गए थे, से अविचलित रहने के चलते मोदी को लौह पुरुष कहा जाने लगा। उसके बाद इस लौह पुरुष ने स्वयं को विकास पुरुष के रूप में उभारा। अपनी सरकार की उपलब्धियों का बखान करके अपनी छवि विकास पुरुष के तौर पर पेश की। अलबत्ता, इन उपलब्धियों से उन कुछेक कारोबारियों को ही लाभ हुआ जिन्हें उदार कर छूटों तथा अन्य प्रकार की सब्सिडियां दी गईं।

मोदी सरकार के साहसी फैसले

बीते तीन सालों में मोदी सरकार ने कुछ साहसी फैसले किए। कुछ बड़े सुधार किए। हालांकि कुछ फैसलों को उन्हें वापस भी लेना पड़ा। वापस लिए जाने वाले फैसलों में भूमि अधिग्रहण एक्ट के वे संशोधन भी रहे जिनके तहत सरकार द्वारा निजी उद्यमों के लिए भूमि अधिग्रहण किए जाने की सूरत में सत्तर प्रतिशत भूस्वामियों की सहमति संबंधी प्रावधान को हटाने की बात कही गई थी। किसानों ने एकजुटता से विरोध करके भूमि अधिग्रहण एक्ट में संशोधन संबंधी अध्यादेश वापस लेने के लिए सरकार को मजबूर कर दिया। मोदी सरकार के नेशनल ज्यूडिशियल अपांइटमेंट्स कमीशन को सुप्रीम कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया। लेकिन मोदी सरकार कुछ सुधार कराने में सफल रही। योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग का गठन कर सकी। जीएसटी बिल को लेकर अरसे से बने गतिरोध से पार पा सकी। नीति आयोग को वंचित तबकों के समावेशन संबंधी दिक्कतों से अब नहीं गुजरना पड़ेगा। आयोग 'ट्रांसफोर्मिंग इंडिया' के मकसद वाला थिंक टैंक हो गया है, जिसका सरोकार ढांचागत विकास के मद्देनजर बाजार और औद्योगिक गलियारे विकसित करने से जुड़ गया है।

सरकार ने जोरदार तरीके से अनिच्छुक नागरिकों तक को आधार नम्बर से जोड़ने का प्रयास किया है। आधार को कल्याणकारी योजनाओं और आयकर विवरणी भरने के लिए अनिवार्य बनाया गया। प्रधानमंत्री कारोबारियों से अपनी मित्रता के लिए जाने जाते हैं। इसलिए 'कारोबारी सुगमता' और 'मेक इन इंडिया' जैसे अभियानों को तरजीह मिल रही है। इनके चलते कारोबार के लिए ज्यादा जांच-परख और नियमन को शिथिल किया जा रहा है। तेजी से कारोबारी मंजूरी मिल रही हैं। कॉरपोरेट करों को कम किया गया है। विनियमनों के माहौल को हल्का किया गया है। पगार कम की गई हैं। भूमि अधिग्रहण को सरकार ज्यादा से ज्यादा आसान बनाने में जुटी है। उद्योगों के लिए करदाताओं के पैसे का उपयोग ढांचागत सुविधाएं विकसित करने में किया जा रहा है। मुंबई से अहमदाबाद तक बुलैट ट्रेन चलाना सरकार की प्राथमिकता में शामिल है।

सांप्रदायिक स्थिति

हिंदू राष्ट्रवादियों ने गोविंद पनसारे तथा एमएम कलबुर्गी की हत्या कर दी। दोनों प्रमुख बुद्धिजीवी थे। इससे पहले कांग्रेस के शासकाल में नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या की गई थी। सूर्य नमस्कार हरियाणा जैसे राज्यों में गीता के पठन-पाठन के साथ अनिवार्य बनाया गया। हिंदू राष्ट्रवादी सोच ऐसी है जिसे उन दमनकारी नीतियों तक से गुरेज नहीं है जो संभ्रांत कही जाने वाली उच्च जातियों के 'सांस्कृतिक' विशेषाधिकारों को बनाए रखते हुए 'अन्य' समुदाय को हाशिये पर धकेले दे रही हों। ध्रुवीकरण इस हालत तक हो रहा है कि कुछ राज्यों में गोडसे के मंदिर बनाए जा रहे हैं, और गोडसे को नायक की भांति स्थापित किया जा रहा है। पाकिस्तान के खिलाफ युद्धोन्माद तथा देश में मुस्लिमों के खिलाफ माहौल बनाने में उसके नाम का उपयोग किया जा रहा है। हिंदू राष्ट्रवादी सोच ने तेजी से अपने पांव पसारे हैं, और निम्न मध्यम वर्गों के युवाओं और ग्रामीण धनाढ़य वर्गों में इस सोच ने तेजी से अपना प्रभाव बढ़ाया है। गिरिजाघरों पर बढ़ते हमले-दिसम्बर, 2014 के बाद से ऐसी ग्यारह घटनाएं हो चुकी हैं जिनमें दिल्ली, प. बंगाल, पनवेल (महाराष्ट्र) और मध्य प्रदेश की घटनाएं शामिल हैं, इस बात का परिचायक हैं कि हिंदू राष्ट्रवादी सोच किस तेजी से व्यापक रूप ले रही है। सत्ताधारी पार्टी के सांसद यहां तक कि मंत्री भी ऐसे बयान दे रहे हैं, जो दुर्भावना, घृणा या वैर फैलाने के आरोप में भारतीय दंड संहिता की धारा 153 ए के तहत दंडनीय हैं। गिरिराज सिंह, साक्षी महाराज, योगी आदित्यनाथ, साध्वी प्राची और अन्य नेताओं ने इस प्रकार के बयान दिए हैं। इन बयानों का व्यापक रूप से प्रसार-प्रचार हुआ है, और सरकार ने अपने संवैधानिक कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हुए इस प्रकार के बयानों को अनदेखा किया। हालांकि धारा 153ए, 153बी, 295 आदि के तहत कार्रवाई की जानी चाहिए थी। घर-वापसी का शोर जब-तब उठता रहता है। कभी आगरा तो कभी कहीं और। लेकिन धर्मों के बीच सद्भाव बिगाड़ने की दृष्टि से कोई कार्रवाई देखने में नहीं आई। इसी प्रकार हिंदू लड़कियों की मनमर्जी से किसी अन्य धर्म के लड़के से विवाह को तंगदिली से देखा जा रहा है। प्रेमी युगल की मर्जी को नहीं माना जा रहा। हिंदू राष्ट्रवादी अन्य धर्मों के खिलाफ नफरत फैलाने में जुटे हुए हैं। गौ हत्या संबंधी कानूनों का अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न में धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जा रहा है। अल्पसंख्यकों को दूसरे दर्जे के नागरिक बना डाला है।

इलस्ट्रेशन जे.पी. त्रिपाठी

हालांकि कांग्रेस के शासनकाल में भी सांप्रदायिक हिंसा की घटनाएं हुई थीं। लेकिन हाल के वर्षों में ऐसी घटनाओं में खासा इजाफा हुआ है। आकंड़ों के अनुसार 2013 में सांप्रदायिक हिंसा की 833 घटनाएं हुईं। 2014 में यह आंकड़ा 644 तो 2015 में 751 रहा। 2016 में यह आंकड़ा मई माह तक के लिए उपलब्ध है, जो 278 है। 2013 में चुनाव अभियान के कारण सांप्रदायिक हिंसा की ज्यादा घटनाएं होने की उम्मीद थी, उस साल मुजफ्फरनगर के दंगे भी हुए। ऐसी भी घटनाएं हाल के वर्षों में बढ़ी हैं, जहां जान का नुकसान तो ज्यादा नहीं हुआ है, लेकिन वे बेहद गंभीर किस्म की रहीं जिनने इनसायित को शर्मसार कर दिया। दादरी की घटना भी एक ऐसी ही घटना है। दादरी में अखलाक की हत्या, लातेहर (झारखंड) में पिता-पुत्र की महज इसलिए हत्या कि वे एक गाय को बाजार ले जा रहे थे, हरियाणा के मेवात में एक गौपालक पहलू खान की इसलिए हत्या कि वह पैठ बाजार से गाय खरीद कर वैध कागजों के साथ अपने गांव लौट रहे थे। हाल के समय में गौरक्षकों के हाथों हिंसा की घटनाओं में नाटकीय बढ़ोतरी हुई है। प्रधानमंत्री ने एक बार कहा था कि 80 प्रतिशत गौरक्षक असामाजिक तत्व हैं। लेकिन गौपालकों के खिलाफ हिंसा करने पर भी अपने खिलाफ कोई सख्त कार्रवाई न होने से हौसले बढ़ गए हैं। उन्हें कानून का डर नहीं रह गया है।

गौरक्षकों की बेपरवाही

प्रधानमंत्री के कथन का आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत की तरफ से प्रतिवाद हुआ और प्रधानमंत्री ने इस पर एक शब्द भी नहीं कहा। ये कथित गौरक्षक बूढ़ी और बीमार गायों की कभी परवाह नहीं करते। गाय कूड़ेदानों पर मंडराती फिरती हैं, प्लास्टिक की थैलियां सटक जाने से उनकी असमय मौत हो जाती है, या सरकार के पैसे से चलने वाली गौशालाओं में तमाम पीड़ाकर स्थितियों में गायों को रहना पड़ता है। लेकिन कथित गौरक्षकों को इनकी परवाह नहीं है। उत्तर प्रदेश में एंटी-रोमियो स्कवायड्स ने युवा जोड़ों को हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा उत्पीड़ित किए जाने के हालात बना रखे हैं। युवा जोड़े अपनी मर्जी से निजता का जीवन जी रहे होते हैं, और हिंदू राष्ट्रवादी उनके जीवन में खलल डालने को आमादा दिखते हैं। उनका सार्वजनिक रूप से अपमान करते हैं। लव जिहाद के नाम पर उन जोड़ों को निशाना बनाया जाता है, जिनमें लड़की हिंदू हो और लड़का मुस्लिम। उनके विवाह को लड़की को बहका लिए जाने के नाम पर अवैध ठहराने की कोशिश होती है। हाल में मथुरा में साठ वर्षीय एक मुस्लिम को सिर्फ इसलिए मार डाला गया कि उसका भतीजा विवाह करने की इच्छा से एक हिंदू लड़की को लेकर घर से भाग गया था।

भावी दिशा

हालांकि यह उम्मीद करना बेकार है कि स्थिति में कोई सुधार होगा। खासकर उत्तर प्रदेश में चुनाव के बाद तो ऐसी उम्मीद करना बेमानी है, जहां विधान सभा की 403 सीटों के लिए हुए चुनाव में भाजपा ने 325 सीटें जीती हैं। इससे भाजपा की योगी आदित्यनाथ को मुख्यमंत्री बनाने का मन बढ़ा जो मुस्लिम-विरोधी रुख और वैर-घृणा फैलाने वाले भाषणों के लिए जाने जाते हैं। बहरहाल, उम्मीद की जानी चाहिए कि मोदी सरकार विकास के एजेंडा पर काम करेगी क्योंकि 'सबका साथ, सबका विकास' के वादे के साथ सत्ता में आई है। सभी के विकास खासकर हाशिये पर पड़े तबकों के विकास के लिए आवश्यक है कि रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर पैदा किए जाएं। मोदी ने हर साल दो करोड़ रोजगार सृजन का वादा किया था, लेकिन बीते तीन सालों में मात्र 1.95 लाख नौकरियां ही पैदा की जा सकीं। शिक्षा के प्रसार खासकर हाशिये पर पड़े तबकों के लिए शिक्षा के लिए सर्वसाक्षरता तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काफी कुछ करना होगा। सच्चा राष्ट्रवाद कानून का पालन करने में है। संविधान की भावना के अनुरूप आचरण करने में है। अभिव्यक्ति और संवैधानिक संस्थाओं की आजादी भी इसमें निहित है। ■

सच छुपाने के लिए शोर

मोदी सरकार के तीन साल पूरे होने के मौके पर सरकार ने और सत्ताधारी भाजपा ने धुंआधार प्रचार की विराट योजना तैयार की है। सरकार की उपलब्धियों के बारे में बताने के नाम पर देश के पूरे 900 शहरों में आयोजन होना है। इसमें केंद्रीय योजनाओं से लाभान्वित होने वालों के साथ केंद्रीय मंत्रियों के भोज के आयोजन भी शामिल हैं। सरकार का अभियान 'न्यू इंडिया' के नाम से चलाया जाएगा, जबकि असाधारण मोदी-भक्ति का प्रदर्शन करते हुए भाजपा के अभियान के लिए 'मेकिंग ऑफ डवलपिंग इंडिया' का नारा चुना गया है क्योंकि हिंदी में उसका संक्षिप्त रूप बनता है, 'मोदी'। बेशक, दो साल पूरे होने पर भी कमोबेश ऐसी ही प्रचार की आंधी उठाई गई थी। लेकिन तीन साल पूरे होने पर किया जा रहा प्रचार उद्यम पिछले साल के मुकाबले दोगुने से भी ज्यादा बड़ा हो गया है। क्यों न हो, अपनी विफलताओं को ढांपने के लिए प्रचार की मोदी सरकार की जरूरत भी तो पिछले साल से दोगुनी हो गई है। कहने की जरूरत नहीं है कि नोटबंदी को भुनाने में और उत्तर प्रदेश के चुनाव में कामयाबी के बाद अपने प्रचार अंधड़ की कामयाबी पर मोदी और उनकी भाजपा का भरोसा भी पिछले साल से दोगुना हो गया है। आखिर, गोयबल्स ने कहा ही था, 'बड़ा झूठ बोलो, सौ बार बोलो, तो लोग सच मानने लगते हैं।'

बहरहाल, प्रचार के सचाई को ढांपने-नहीं ढांप पाने में तो संदेह हो सकते हैं, लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि मोदी सरकार का तीसरा साल पूरा होने के मौके पर देश के हालात किसी भी तरह से कामयाबी का जश्न मनाने लायक नहीं हैं। खेती, जिस पर देश की जनता का सबसे बड़ा हिस्सा निर्भर है, का संकट न सिर्फ बना हुआ है बल्कि और गहरा हो गया है। इसका सबूत मोदी राज के तीन साल में देश में किसानों की आत्महत्याओं के आंकड़े में उल्लेखनीय बढ़ोतरी होना है। वास्तव में परोक्ष रूप से इसी का सबूत उत्तर प्रदेश के चुनाव में भाजपा का किसानों के लिए ऋण माफी के वादे से वोटों की अच्छी कमाई करना भी है, जिस वादे को इस संकट के दबाव में ही चुनाव के बाद मुख्यमंत्री योगी ने आंशिक रूप से पूरा भी किया है।

> **अंधाधुंध भगवाकरण की कोशिश में तमाम संस्थाओं को कमजोर किया जा रहा है, उच्च शिक्षा संस्थाओं की प्रतिष्ठा गिराकर उन्हें हंसी का पात्र बना दिया गया है। आइसीएसएसआर के नये अध्यक्ष की नियुक्ति और अब 'उत्तम संतति' के लिए 'गर्भ विज्ञान संस्कार' को बढ़ावा भारतीय मेधा की हंसी उड़वाने के ताजातरीन बहाने हैं**

हर क्षेत्र में बढ़ रहा है संकट

लेकिन बढ़ता संकट सिर्फ कृषि के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र भी भारी संकट में है, और औद्योगिक वृद्धि दर महीनों से शून्य से कुछ ऊपर, कुछ नीचे के झूले पर झूल रही है। इसके ऊपर से नोटबंदी की मार जिसने, खुद सरकार की स्वीकृति के अनुसार, कम से कम अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर, जो हमारे देश की अर्थव्यवस्था का 80 फीसद हिस्सा है, घातक प्रहार किया था। और तो और पिछले कुछ समय से प्रगति का इंजन बना रहा सेवाओं का क्षेत्र भी संकट के दौर से गुजर रहा है। चमकदार सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र खासतौर पर अपने निर्यातों में कमी के चलते भारी संकट में है। जाहिर है कि ट्रंप निजाम की एचबी-1 वीजा नीतियों और आम तौर पर पश्चिम में चल रही आउटसोर्सिंग-विरोधी संरक्षणवादी हवा से यह संकट और गहरा हो गया है। इसी सब का नतीजा है कि हर साल दो करोड़ नये रोजगार जुटाने का वादा कर के सत्ता में आई मोदी सरकार लाखों का आंकड़ा भी मुश्किल से छू पा रही है, जबकि संगठित औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार लगातार घट रहे हैं।

इसी संकट की एक विस्फोटक सामाजिक अभिव्यक्ति के तौर पर गुजरात में पटेल, महाराष्ट्र में मराठा और हरियाणा में जाट जैसे परंपरागत रूप से ताकतवर माने जाने वाले मंझले कृषक समुदायों के आरक्षण की मांग के आंदोलन उठे हैं, जो वास्तव में अपने लिए आरक्षण की मांग के आंदोलन उतने नहीं हैं, जितने कि दलित व अन्य पिछड़ों के लिए आरक्षण के विरोध के आंदोलन हैं। इसी में इन आंदोलनों की विस्फोटक क्षमता छुपी हुई है। बड़े पैमाने पर इन अंदोलनों का उठना इसका जीता-जागता सबूत है कि सबके विकास का नरेन्द्र मोदी का वादा अपेक्षाकृत समर्थ सामाजिक समुदायों तक को अच्छे दिन आने का भरोसा दिलाने में असमर्थ रहा है, और वास्तव में हालात उन्हें आंदोलन के रास्ते पर धकेल रहे हैं। इसी संकट की अभिव्यक्ति के तौर पर समाज के दूसरे छोर पर रोहित वेमुला की संस्थागत हत्या से लेकर गुजरात में उना के दलित उत्पीड़न कांड तक के प्रसंगों में अनुसूचित जातियों की अकल्पनीय रूप से बड़ी तथा लड़ाकू गोलबंदियां सामने आई हैं।

एक और सिरे पर बढ़ते मौजूदा संकट के खिलाफ और बहुत बार सरकार की ही नीतियों व कदमों के खिलाफ विभिन्न स्तरों पर मजदूरों तथा अन्य मेहनतकशों की गोलबंदियां भी उतनी ही उल्लेखनीय हैं।

विपक्ष की कमजोरी बनी संबल

यह सब अगर तीन साल बाद भी मोदी सरकार के खिलाफ एक सुसंगत पुकार का रूप नहीं ले पाया है, तो इसके लिए विपक्ष की कमजोरी तथा विफलता जितनी जिम्मेदार है, उतनी ही अपने गिर्द के वास्तविक हालात से लोगों का ध्यान बंटाने में सरकार और उससे बढ़कर भाजपा-आरएसएस की कामयाबी जिम्मेदार है। उत्तर प्रदेश के चुनाव में विकास के नारे के साथ एक ओर श्मसान बनाम कब्रिस्तान की दुहाई तथा दूसरी ओर जाटव तथा यादव विरोधी जातीय गोलबंदी का योग, न तो कोई संयोग था और न अपवाद। आरएसएस के नेतृत्व में भाजपा के लिए बड़े सचेत रूप से ऐसा सामाजिक आधार खड़ा किया जा रहा है, जो अपने स्वभाव में ही अल्पसंख्यक विरोधी है, और निचली जातियों के अपेक्षाकृत सबल हिस्सों का भी विरोधी है, जिनसे ऊंची जातियों के वर्चस्व के लिए खतरा पैदा होता है। हिंदुत्व की अल्पसंख्यक विरोधी तथा सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से प्रतिगामी मुहिम इसका मुख्य हथियार है। यह मुहिम बहुसंख्यकों की बढ़ती सांप्रदायिक तथा सवर्ण वर्चस्ववादी गोलबंदी के जरिए अपने हितों के वास्तविक मुद्दों पर आम लोगों की आवाज को कमजोर तथा निष्प्रभावी बनाने का काम करती है। मीडिया और खासतौर पर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर कसता शिकंजा इस गोलबंदी के प्रसार का काम करता है। और पड़ोसी देशों खासतौर पर पाकिस्तान से लेकर घरेलू तौर पर कश्मीर तक के मामले में छाती ठोकू राष्ट्रवाद इस हिंदुत्ववादी मुहिम को किंचित सम्मानजनक चोगा ओढ़ाने का काम करता है।

अचरज नहीं कि मोदी के राज के तीन साल सिर्फ पाकिस्तान ही नहीं, नेपाल से लेकर श्रीलंका व चीन तक आम तौर पर निकट पड़ोसी देशों के साथ रिश्तों के रसातल में जा लगने के साल हैं। और कश्मीर को तो खैर तीस साल पीछे धकेल ही दिया गया है। अंधाधुंध भगवाकरण की कोशिश में तमाम संस्थाओं को कमजोर किया जा रहा है, और विज्ञान समेत विभिन्न क्षेत्रों की उच्च शिक्षा संस्थाओं की प्रतिष्ठा गिराकर दुनिया की नजरों में उन्हें हंसी का पात्र बना दिया गया है। आइसीएसएसआर के नये अध्यक्ष की नियुक्ति और अब 'उत्तम संतति' के लिए 'गर्भ विज्ञान संस्कार' को बढ़ावा भारतीय मेधा की हंसी उड़वाने के ताजातरीन बहाने हैं। इसी सब को छुपाने के लिए प्रचार की आंधी का शोर चाहिए और पिछले साल से ज्यादा शोर चाहिए। और चूंकि मोदी सरकार चौतरफा संकट बढ़ाने वाले विकास के नवउदारवादी रास्ते पर ही और तेजी से बढ़ने जा रही है, हिंदुत्ववाद के रास्ते से जनता के असंतोष को दिशाहारा बनाने की और इसलिए प्रचार के शोर की भी उसे अगले साल और ज्यादा जरूरत पड़ेगी। मोदी की भाजपा बढ़ते शोर से सच को छुपाने के इसी रास्ते पर चलने के लिए अभिशप्त है। यह दूसरी बात है कि यह प्रचार के शोर का पर्दा भी सच को हमेशा तो छुपाए नहीं रख सकता। ■

मोदी का भाग्य और विरोधी छींकों का टूटना

लोक सभा चुनाव जीतने भर से किसी राजनीतिक दल का देश भर पर वर्चस्व स्थापित नहीं हो जाता। 1977, 1989 और 1996-97 और उसके बाद 1998-2004 तक किसी न किसी रूप में गैर-कांग्रेसी सरकारें दिल्ली की गद्दी पर बैठीं पर राष्ट्रीय राजनीति पर कांग्रेस का वर्चस्व एक हद तक बना रहा। वजह थी राज्यों की विधान सभाओं पर कांग्रेस की पकड़। इसके कारण राज्य सभा में भी कांग्रेस का वर्चस्व बना रहा यानी विपक्ष में रहकर भी कांग्रेस प्रभावशाली बनी रही। पर अब वह स्थिति नहीं है।

पिछले तीन साल में संसद और सड़क पर ही नहीं, गांवों और गलियों तक में विपक्ष की ताकत घटी है। बीजेपी फिलहाल सफल है। पिछले तीन साल में उसने अपनी स्थिति बेहतर बनाई है जबकि विपक्ष में बिखराव नजर आ रहा है। नोटबंदी के बाद से यह बिखराव और स्पष्ट हुआ है। अभी तक कांग्रेस राज्य सभा में अपनी बेहतर स्थिति के कारण एक सीमा तक प्रतिरोध कर पाती थी, यह स्थिति अब बदल रही है। अगले साल राज्य सभा के चुनाव के बाद स्थितियों में गुणात्मक बदलाव आ जाएगा।

विपक्ष माने क्या?

बीजेपी के मुकाबले राष्ट्रीय स्तर पर केवल कांग्रेस के पास ही विचार और संगठन शक्ति है। पिछले तीन साल में जहां-जहां कांग्रेस कमजोर हुई है, वहां-वहां बीजेपी ने उसकी जगह ली है। क्या यह केवल सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण हुआ है? क्या मोदी के विकास का एजेंडा या जादू है? क्या यह मजबूत नेता का चमत्कार है? कांग्रेस के विचारकों को इस बात पर विचार करना चाहिए कि 2009-2014 तक के उनके कार्यकाल में ऐसा क्या हुआ, जिसके कारण 'कांग्रेस-मुक्त भारत' की स्थिति आ गई। उसके बाद ही हमें 'उत्तर 2014' पर विचार करना चाहिए। कुछ लोग मानते हैं कि नरेन्द्र मोदी के भाग्य से छींके टूटते ही जा रहे हैं। उत्तराखंड में कांग्रेस के भीतर टूट हुई। असम के कांग्रेसी नेतृत्व का महत्वपूर्ण धड़ा भाजपा के साथ चला गया। अरुणाचल में कांग्रेस गई, मणिपुर में गई। गोवा में क्या हुआ, किसी को समझ नहीं आया। सिवा पंजाब के कहीं से 'खुशखबरी' नहीं है।

> **पिछले तीन साल में जहां-जहां कांग्रेस कमजोर हुई है, वहां-वहां बीजेपी ने उसकी जगह ली है। क्या यह केवल सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण हुआ है? क्या मोदी के विकास का एजेंडा या जादू है? क्या यह मजबूर नेता का चमत्कार है? कांग्रेस के विचारकों को इस पर विचार करना चाहिए कि उसके कार्यकाल में आखिर क्या हुआ**

पार्टियों की अंतर्कलह

उत्तर प्रदेश के चुनाव के ठीक पहले समाजवादी पार्टी को अंतर्कलह ने घेर लिया। परिवार के भीतर घमासान शुरू हुआ, जो पार्टी को ले डूबा। इधर, दिल्ली में आम आदमी पार्टी के भीतर सिर-फुटौवल शुरू हो गया है। बसपा जैसे लौह-अनुशासन वाली पार्टी में मायावती की फजीहत करने के लिए नसीमुद्दीन जैसे नेता सामने आए हैं, जो उनके सबसे करीबी 'वफादार' हुआ करते थे। धुर दक्षिण में अम्मा की पार्टी में अंदरूनी फजीहत चल रही है। इसे छींका टूटना कहें या राजनीतिक वास्तविकताओं का प्रस्फुटन? इन पार्टियों के अंतर्विरोध खुल रहे हैं। हाल में कांग्रेस के मुख्य प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला ने कहा, कांग्रेस में शुरू से ही वरिष्ठ और युवा पीढ़ी मिल-जुल कर जिम्मेदारी संभालती आई है। हम साख और अनुभव रखने वाले को खारिज कर कोप भवन नहीं भेजते। उसे मार्गदर्शक मंडल नहीं कहते। उनका साफ संकेत भाजपा के लालकृष्ण आडवाणी को लेकर था। सुरजेवाला जो भी कहें, उनकी पार्टी का गुब्बारा भी फूट सकता है। उनके यहां भी नाराज वरिष्ठ बैठे हैं। मोदी की सफलताएं मार्गदर्शक मंडल के अंतेवासियों के गुस्से को बाहर निकलने का मौका नहीं दे रही हैं, जबकि उनके विरोधी दलों के अंतर्विरोध खुलते जा रहे हैं। एनडीए सरकार के तीन साल पूरे होने जा रहे हैं। अभी तक लगता नहीं कि मोदी की लोकप्रियता में कमी आई है। इसमें कुछ मोदी का व्यक्तिगत चमत्कार है, और कुछ विपक्ष की विफलता।

नीतिगत विमर्श से पलायन

नीतियों के स्तर पर मोदी सरकार के तीन मुख्य स्तंभ हैं-आर्थिक, विदेश और सुरक्षा। तीनों को लेकर तमाम विवादास्पद फैसले हुए हैं, पर सरकार उन सबसे बाहर निकल आती है। मोदी सरकार ने भूमि-अधिग्रहण की दिक्कतों को लेकर शुरुआत की। विपक्ष ने उसके संशोधनों को राज्य सभा में रोक लिया। एक लंबी प्रक्रिया के बाद अब संसद के संयुक्त अधिवेशन की नौबत आ रही है। कांग्रेस पार्टी को अंततः जीएसटी का दरवाजा खोलना पड़ा। सरकार ने बजट पेश करने की तारीख बदल दी। अब शायद वित्त वर्ष भी बदलेगा। विरोधी दलों ने संसद के भीतर और बाहर केवल शोर को राजनीतिक विमर्श माना। कांग्रेस को लगता था कि नोटबंदी के कारण भाजपा का पहिया उल्टा चलने लगेगा, ऐसा नहीं हुआ। सीमा पर पाकिस्तानी गतिविधियों से लेकर कुलभूषण जाधव तक हर मामले में बीजेपी अपने पक्ष में जनमत बनाने में कामयाब है। 2014 के बाद से विधान सभाओं के जो चुनाव हुए हैं, उनमें 2015 में दिल्ली और बिहार के चुनावों के अलावा बीजेपी को कहीं ऐसी पराजय का सामना नहीं करना पड़ा, जिससे एंटी इनकम्बेंसी का पता लगे। मोदी के चेहरे पर बीजेपी ओडिशा, महाराष्ट्र और दिल्ली के स्थानीय निकाय चुनावों में जीत हासिल करने में कामयाब रही है।

कांग्रेस की दुविधाएं

बीजेपी को चुनौती देने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी कांग्रेस पर है। लेकिन राहुल गांधी उस मानसिक घेरे से बाहर निकलने को तैयार नहीं हैं, जो उन्हें अध्यक्ष बनने से रोक रहा है। औपचारिक रूप से पार्टी अध्यक्ष का चुनाव 16 सितम्बर से 15 अक्टूबर के बीच कराया जाएगा। पर राहुल का अनिश्चय कायम है। पार्टी कार्यसमिति ने नवंबर 2016 की बैठक में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर उनसे पार्टी की कमान संभालने का अनुरोध किया था। पार्टी ने संगठन में बड़े बदलाव की प्रक्रिया शुरू कर दी है। उत्तराखंड और पंजाब में नए अध्यक्षों की नियुक्ति की गई है। राजस्थान में अविनाश पांडेय को नया प्रभारी महासचिव बनाया गया है, जहां अगले साल चुनाव होने हैं। इस साल के अंत में हिमाचल प्रदेश और गुजरात विधान सभाओं के चुनाव हैं। 2019 के लोक सभा चुनाव के पहले 2018 में जिन राज्यों के विधान सभा चुनाव होंगे, उन सब में कांग्रेस की परीक्षा है। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और कर्नाटक, इन चारों राज्यों में बीजेपी और कांग्रेस, दोनों की इज्जत दांव पर होगी। मोटे तौर पर अगले लोक सभा चुनाव के पहले जिन छह विधान सभाओं के चुनाव होने वाले हैं, उन सब में कांग्रेस की अग्नि-परीक्षा है। हिमाचल और कर्नाटक में कांग्रेस की सरकारें हैं। सवाल है कि क्या पार्टी अपनी सरकारों को बचा पाने में कामयाब होगी? या यहां भी उसकी हार होगी? कर्नाटक में हार का मतलब ज्यादा बड़ा होगा क्योंकि अभी तक दक्षिण में कांग्रेस की इज्जत वहीं पर बची है। दूसरी ओर पार्टी के पास छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान में वापसी का मौका भी है। कांग्रेस की सबसे अच्छी संभावनाएं छत्तीसगढ़ में हैं, जहां पिछले विधान सभा चुनाव में वह जीतते-जीतते हार गई थी।

राष्ट्रपति चुनाव से जुड़ी विपक्षी एकता

2015 के बिहार विधान सभा चुनाव में कांग्रेस गैर-भाजपा महागठबंधन में शामिल हुई। हालांकि उसमें उसे बड़ा राजनीतिक लाभ नहीं मिला पर विपक्षी एकता के कुछ सूत्र जरूर उसके हाथ आए। इन्हीं सूत्रों के सहारे उसने इस साल उत्तर प्रदेश के विधान सभा चुनाव में समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन स्थापित किया पर सफलता के बजाय इतिहास की सबसे बड़ी विफलता मिली। गठबंधन राजनीति उतनी सरल नहीं है, जितनी दूर से लगती है। इतनी बड़ी संख्या में पार्टियों का होना, बताता है कि किसी न किसी वजह से राजनीतिक हित इतनी बड़ी संख्या में हैं कि उन्हें एक नहीं किया जा सकता। वैचारिक अनेकता के कारण हमारी सामाजिक विविधता में भी छिपे हैं। बहरहाल, अब कांग्रेस राष्ट्रपति चुनाव के लिए विपक्षी एकता का प्रयास कर रही है। इस एकजुटता की कोशिश का असली मकसद भी 2019 के लोक सभा चुनाव हैं। भाजपा को रोकने और कांग्रेस को बचाने का यह बड़ा मौका होगा। ■